International Journal of Applied Research 2018; 4(1): 562-564

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2018; 4(1): 562-564
www.allresearchjournal.com
Received: 17-11-2017
Accepted: 21-12-2017

डॉ० मनोज कुमार
दिग्घी पोखर (पश्चिम), (प्रोफेसर कॉलोनी) लालबाग, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ० मनोज कुमार
दिग्घी पोखर (पश्चिम), (प्रोफेसर कॉलोनी) लालबाग, दरभंगा, बिहार, भारत

'द्वयाश्रय' का मोक्ष अवधारणाा : एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ० मनोज कुमार

सारांश
प्राकृत भाषा के प्रसिद्ध ग्रंथ 'कुमारपाल–चरित' का दूसरा नाम 'द्वयाश्रय' भी है। जैन ग्रंथों में इसे 'द्वयाश्रय' के नाम से ही प्रायः जाना जाता है। यह बीस सर्गों का महाकाव्य है। इसके रचयिता हेमचन्द्र सूरि हैं। हेमचंद्र ने मात्र चार सर्गों में, अण हिलवाड पाटन के चालूक्य वंशी राजा कुमारपाल के यशोमय व्यक्तित्व का बखान किया है और शेष सर्गों में जैन–धर्म की मान्यताओं का रोचक वर्णन किया है। जैन मान्यताओं में 'मोक्ष' का अन्यतम स्थान है। इसे ही आलेख का विषय बनाया गया है।

प्रस्तावना
जिस प्रकार मैं दुःख नहीं चाहता उसी प्रकार संसार का कोई भी जीव दुःख नहीं चाहता। यह सूत्र वाक्य जैन नीति शास्त्र का आधार है। जैन दर्शन को छोड़ किसी अन्य दर्शन मे अहिंसा पर बहुत जोर नहीं दिया गया है। जैन दर्शन में सात द्रव्यों और किसी–किसी के मत से पाप और पुण्य मिलाकर नौ द्रव्य स्वीकार किये गये हैं। प्रत्यक्षतः जैन दर्शन यह अनुभव करता है कि जीव अनन्त है, क्योंकि यदि ऐसा न हो तो एक समय ऐसा आयेगा कि सभी जीव मोक्ष प्राप्त कर लेंगे और यह संसार जीव से शून्य हो जायेगा या मुक्त जीवों को पुनः संसार में वापस आना पड़ेगा, जो प्रकृति के विरुद्ध होने पर स्वीकार नहीं किया जा सकता।

विषय–वस्तु
जैन दार्शनिकों ने यह माना कि जीव जिस शरीर में निवास करता है उसका सह विस्तारी बन जाता है, ठीक वैसे ही जिस प्रकार दीपक का प्रकाश दीपक रखे कमरे में। इस तरह प्राण और जीव में कोई भेद नहीं है। अन्य दर्शनों में जिसे प्राण कहा जाता है उसे ही जैन दर्शन में जीव या आत्मा कहते हैं। यह अनुभव करने की चीज है कि जब तक प्राण का शरीर में निवास रहता है, तब तक शरीर का प्रत्येक अंग क्रियाशील रहता है और क्रियाशील प्राण की व्याप्ति में ही संभव है। जीव का शरीर के साथ एक दृष्टिकोण से भेद भी सत्य है और एक अन्य दृष्टिकोण से दोनों में तादात्म्य भी है क्योंकि शरीर के दुःखों से जीव भी प्रभावित होता है, दूसरी तरफ वह शरीर से भिन्न है क्योंकि शरीर के नाश के साथ उसका नाश नहीं होता है।
सामान्यतः जैन दार्शनिक जीवों को दो भागों में विभक्त होने की बात करते है' बद्ध तथा मुक्त। बद्ध जीवों का फिर दो अलग–अलग दृष्टिकोणों से वर्गीकरण होता है, एक ऐसा जीव जिसमें मन है तथा दूसरा जिसमें मन नहीं है। पुनश्च जंगम तथा स्थावर बद्ध जीवों के दो वर्ग बनते हैं। इन्द्रियों के आधार पर जंगम जीवों को बांटा गया है। अब जीवों के स्वभाव पर चर्चा करते हुए दार्शनिकों का मत है कि स्वभाव से जीवा मे.अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य निहित हैं। ये चारों जैन नीतिशास्त्र में अनन्त चतुष्टय कहलाते हैं। यदि जीव में स्वभाव से अनन्त चतुष्टय निहित न होता तो न ही वह कभी मोक्ष प्राप्त कर सकता था और न ही मोक्ष की अवस्था में वह इन गुणों से सम्पन्न हो सकता था। अब जिज्ञासा का विषय यह है कि यदि जीव स्वभाव से ही शुद्ध होता है तो वह बंधन में कैसे पड़ जाता है, परन्तु जैनियों का यह बंधन सिद्धान्त भारतीय दर्शन में अपने में अनूठा है। यथार्थतः जीव स्वयं अपने कर्मों में बंधता है। प्रत्येक क्रिया के साथ चाहे वह शारीरिक या मानसिक हो यह जीव में प्रवेश करके उसे स्वाभाविक गुणों को ढक लेते हैं, यही उनका कर्म बंधन है। यदि देखें तो जीव के बंधन के कारण स्वयं उसके विकार युक्त कर्म है। प्रधानतः बंधन के तीन कारण हैः– मिथ्या दर्शन, मिथ्या ज्ञान और मिथ्या चरित्र। जैन तीर्थङ्कारों ने जैसा तत्व निरूपित किया उसमें श्रद्धा न रखना ही मिथ्या दर्शन या मिथ्या विश्वास है। तत्वों के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान न होना ही मिथ्या ज्ञान है तथा राग एवं द्वेष से युक्त भाव से कार्य करना ही मिथ्या चरित्र है। यदि इन बन्धनों का संबंध जीव या आत्मा से हो जाता है तो उनका आत्मा से अलग होना या नाश होना ही मोक्ष कहलाता है।

जैन दर्शनिकों के मत से सम्यक् श्रद्धा, सम्यक्, ज्ञान तथा सम्यक् चरित्र–तीनों ही मोक्ष के साधक हैं। चूँकि ये मोक्ष मार्ग का निर्माण करते हैं अतः जैनियों ने इन्हें त्रिरत्न की संज्ञा प्रदान की है। मोक्ष ईश्वरीय कृपा से प्राप्त होने वाली वस्तु नहीं है; यह इसलिए कि जैनियों का विश्वास ईश्वर में है ही नहीं। जैनियों ने यह माना कि जीव स्वयं अपनी नियति का निर्माता है। उनका ईश्वर या उसकी कृपा पर निर्भर न कर, जीव को स्वयं अपनी नियति का निर्माता घोषित करने वाला धर्म विश्व के इतिहास में अपने ढंग का अनूठा है। जीव आध्यात्मिक गुरुओं के अनुभवों तथा धार्मिक ग्रन्थों का लाभ हो सकता है परन्तु अंततः मोक्ष के लिए वह स्वयं जिम्मेदार है। जैन दर्शन में यह उल्लिखित है कि सांसारिक जीव को मोक्ष तक पहुँचाने के लिए चौदह सोपानों की सीढ़ी है जो अध्यात्म संबंधित है। आध्यात्मिक विकास के इस विभिन्न सोपानों को गुणस्थान कहते हैं।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह विल्कुल सत्य है कि किसी भी विचार और व्यवहार का संस्कार जीव पर पड़े बिना नहीं हो सकता। इसी मनोवैज्ञानिक सत्य को जैन दर्शन कर्मों के भाव और द्रव्य कर्मों के भाव और द्रव्य के भेद के रूप में स्वीकार करता है। परन्तु अन्य दार्शनिक सम्प्रदायों को यह स्वीकार करने में आपत्ति हो सकती है कि जीव में किंचित मात्र परिवर्तन के साथ समानान्तर रूप से परिवेश के कर्मों से भी परिवर्तन होता है वास्तव में कर्मों का आत्मा के साथ संबंध होना और उनका फिर टूट जाना ये ऐसी घटना है जिनका न तो हमें प्रत्यक्ष ज्ञान होता है और न जिसकी सत्यता ही हम अनुमान से स्थापित कर सकते हैं। यह जैन दर्शन की अपनी कल्पना है। कोई इससे सहमत हो या न हो परन्तु इसके मूल में निहित मनोवैज्ञानिक सत्य को अस्वीकार नही किया जा सकता।

जैसा कि कहा गया है, दिगम्बर सम्प्रदाय स्त्रियों की मोक्ष प्राप्ति का समर्थन नही करता। इस पक्ष को लेकर दार्शनिकों में भी मतभेद है। यह संभव है कि इस प्रकार की चिन्ता विशेष रूप से सामाजिक परिस्थितियों की देन हो। मूल रूप से जैन दर्शन एक जीवन पद्धति है। इसके अनुसार, तर्क शास्त्र और तत्व मीमांसा का स्थान नीति शास्त्र की अपेक्षा गौण है। विश्व दर्शन को और विशेषकर भारतीय दर्शन को जैन दर्शन की सर्वाधिक मौलिक देन मोक्ष का सिद्धान्त है।

हेमचन्द्र अपनी मोक्ष संबंधी अवधारणों के लिए प्राचीन आचार्यों के मत का ही अनुसरण करते हैं। इस भौतिक जगत के प्राणी अमृत एवं चन्दन रस के मीठे एवं स्निग्ध स्वाद की तरह परमनिवृति का मार्ग की ओर अग्रसर होना चाहते हैं। [1] एक को पाने के बाद दूसरे को पाने की इच्छा होती है। जिसने धर्म को चाहा उसे मोक्ष की इच्छा भी होगी। अतः गुरुओं द्वारा उपदिष्ट मार्ग का अवलंबन कर धर्म का आचरण करना चाहिये। यही अततः लाभकारी सिद्ध होगा। [2] जैन परम्परा में ऐसे आचार्यों की कमी नहीं रही जिन्होंने जीव दया को जन्म जनमान्तर के संस्कारों से जोड़कर उसके महत्त्व का विचार किया था।

जीव दया का भाव ही आज और कल के लिए मुक्ति का मार्ग खोलता है। [3] परन्तु मोक्ष या मुक्ति इतनी सहज नहीं कि थोड़े से अभ्यास मात्र से इसे जब चाहे पाया जा सके। हेमचन्द्र ने उन जैन साधकों का स्मरण किया है जिन्होंने न केवल सिद्धान्त ग्रन्थ रचा अपितु ज्ञान का वह चरमोत्कर्ष भी पाया जिसकी सहायता से कर्म बन्धन को नष्ट कर मोक्ष को पाया जा सकता था। ऐसे साधकों में स्वामिगण का नाम बड़ी श्रद्धा से लिया जाता है। [4] मिथ्या दृष्टि से कल्याण बाधित होता है। जिन प्राचीन आचार्यों को इस गंभीर खतरे का अहसास था वे इसके सम्पूर्ण विनाश के लिए प्रस्तुत हुए। अपने दार्शनिक सिद्धान्तों और आगमों को प्रकट कर उन्होंने यह सिद्ध किया कि मोक्ष कठिन नही कि प्राणी मिथ्या ज्ञान से मुक्त होकर स्वस्थ मन से इसके निमित्त प्रयास करता रहे। [5]

प्रयोजन

जैनियों ने यह माना कि जीव ही अपनी अन्तः प्रेरणा से मोक्ष का अभिलाषी बनता है पर गुरुओं के उपदेश या अन्य धार्मिक ग्रन्थ उसे इसके मार्गों की ओर उन्मुख अवश्य करते हैं। इस प्रकार जरा–मरण के भय से मुक्त होकर जिन आचार्यों ने जिन वचनों का प्रचार प्रसार किया उन्हीं से जगत के प्राणियों को अभयदान मिला। [6] उन धर्माचार्यों के योगदान की भी प्रशंसा करनी चाहिये जिनका साधु स्वभाव था और समभाव में जीवन जीने का गुण था। ये किसी भी काल में सांसारिक भव बाधा से डरते नहीं थे। परमपद अर्थात् मोक्ष के लिए जितने भी अनुशंसित मार्ग हैं उनकी ओर ये अचल भाव से चलते रहे। [7] शांति और संयम मानव के अद्भुत गुण हैं। इनमें धर्म का उत्थान होता है। अर्हत् सिद्धान्त सभी के मन में ज्ञान का संचार करता है। सम्यक् बोध कराने की क्षमता भी यही उत्पन्न करता है। [8] जैनों की दृष्टि में उनका दार्शनिक सिद्धान्त धर्म का साधन स्वरूप है। इसमें मिथ्या मोह और अज्ञान नही रहता। विवेक और युक्ति के द्वारा मुक्ति पथ की ओर बढ़ा जा सकता है। [9]

परन्तु इस मुक्ति या मोक्ष के लिए कार्य कारण का सिद्धान्त लागू होता है। जिन वचनों को धारण करना, अर्हत् द्वारा उद्भाषित गुण स्थानों का अवलंबन कर मिथ्या तत्त्वों को दूर करने का संकल्प लेना और उत्तरोत्तर गुण स्थानों की ओर बढ़ते रहने की प्रवृति मोक्ष मार्ग को सहज बना सकती है। दूसरी ओर भव सुख से अमुग्ध एवं अमोहित तथा स्त्रियों आदि विषय के साधनों के प्रति पूर्ण विमुखत का भाव भी प्राणी को मोक्ष प्रदान कर सकता है। [10]

उपसंहार

द्वयाश्रय के संदर्भो के अनुशीलन से इतनी बात तो विल्कुल साफ है कि मोक्ष कल्पना लोक में विचरण करने वाली कोई वस्तु नहीं है। यदि सम्यक् कर्म किया गया तो यह नहीं मिले, ऐसा नहीं हो सकता। इसलिए हेमचन्द्र अपने समय के प्रायः सभी दार्शनिकों मतों का निचोड़ लेकर अपनी जिस मान्यता को प्रकट करते हैं, उसके अनुसार अर्हत् की वाणी उपयोगी और अर्थवान है। इसे निश्चय ही ग्रहण करना चाहिये ताकि मनुष्य मे सम्यक् आचरण करने की प्रवृत्ति विकसित हो सके और कालक्रम से कर्म ग्रन्थियाँ स्वतः नष्ट होकर मोक्ष का मार्ग खोंल दें। [11] यह अनुभव करना चाहिए कि संयम, व्रत के धारण और सूत्रवचन का स्मरण करने से जन्म सफल हो जाता है। अतीत काल के ऋषि मुनियों का जीवन ऐसा ही था। शील और चरित्र शुद्धि द्वारा इन्हीं मुनियों को योग द्वारा समाधि धारण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यहीं से वे निवृत्ति मार्ग की ओर बढ़े और अंततः उन्हें मोक्ष मिला। [12]

व्रत धारण करने से और अर्हत द्वारा उपदिष्ट वाणी के अनुरूप वचन बोलने से स्व एवं पर–कल्याण की भावना का विकास होता है। जीव स्वयं ही अपने कर्मो का भोक्ता है। इस प्रकार शुभ–अशुभ का भोक्ता मनुष्य अवश्य है क्योंकि वह कर्म में लीन है। परन्तु निवृत्ति मार्गी होने में ही जीवन का सच्चा सुख निहित है। सांसारिक जीवन में निषिद्ध कर्मों की एक विस्तृत श्रृंखला दिखती है जिनका सम्पूर्ण त्याग ही श्रेयस्कर है। व्यावहारिक दृष्टि से यदि देखें तो पाने से अधिक सुख खोने में है। इसीलिए निवृत्ति मार्ग की ओर बढ़ने में महान सुख का अनुभव होता है। अतः द्वादश प्रकार के तप जिनका उल्लेख किया जा चुका है. का अवलम्बन कर जीवन में उच्च आदर्शों की स्थापना करनी चाहिये। [13]

संदर्भ

1. द्वयाश्रय 7.36
2. वही 7.37
3. वही 7.38
4. वही 7.39

5. वही 7.40
6. वही 7.42
7. वही 7.43
8. वही 745
9. वही 7.46
10. ओगाहिअ जिण–वयणो–गुण ढ़ाग–वलग्गियों चडइ मुक्खं।
    भव–सुह–अणगुम्मडिओ अगुम्मिओं मोहणिज्जहिं।। वही 747
11. वही 7.48
12. वही 7.49
13. द्वयाश्रय 7.51